भारत का एक ऋषि

सन्त रोमां रोलां

॥ ओ३म् ॥

भारत का एक ऋषि

★

लेखक

श्रीयुत् सन्त रोमां रोल्या

[सुप्रसिद्ध यूरोपियन (फ्रेंच) ग्रंथकार]

★

अनुवादक और सम्पादक

श्री रघुनाथप्रसाद पाठक

॥ ओ३म् ॥

प्रथम संस्करण की भूमिका

यूरोप के प्रसिद्ध साहित्यिक विद्वान् श्री रोमां रोल्या ने श्री रामकृष्ण परमहंस का जीवन चरित्र लिखते हुए वर्तमान भारत की धार्मिक एवं राष्ट्रीय जागृति के सूत्रधार महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के सम्बन्ध में भी आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करना आवश्यक समझा। रामकृष्ण मिशन ने उक्त पुस्तक के लिखवाने और प्रकाशन पर बहुत बड़ी धनराशि खर्च की है। स्वर्गीय स्वामी वेदानन्द जी महाराज ने मुझे एक बार बताया था कि धन तो खर्च किया रामकृष्ण मिशन ने किन्तु सन्त रोमां रोल्या के मस्तिष्क पर महर्षि दयानन्द के महान् व्यक्तित्व और उनके पवित्र सिद्धान्तों एवं देश सेवा की जो अमिट छाप लग चुकी थी उसे वह एक भारतीय सन्त की जीवनी लिखते हुए भुला न सके। आज देश का नव-निर्माण करते समय लोग दयानन्द और आर्यसमाज को पीछे धकेल कर भुलाना चाहते हैं। भारत से हजारों मील दूर बैठे हुए विदेशी विद्वान् के विचार इस प्रकार के भारतीयों की जान बूझ कर एक सत्य पर पर्दा डालने वाली तन्द्रा भंग करने में सहायक होंगे ऐसी आशा करनी चाहिए। सन्त रोमां ने अपनी स्वाभाविक लेखन शैली का चमत्कार दिखाते हुए जिन शब्दों में महर्षि दयानन्द के कार्यों की सराहना की है वह स्वतन्त्र भारतीय जनता के लिए एक गौरव की वस्तु बन गई है। लगभग एक वर्ष हो गया प्रस्तुत अनुवाद करने के लिए मैंने श्री स्वामी वेदानन्द जी से प्रार्थना की थी

जो कार्यवश श्री स्वामी जी महाराज न कर सके। उनके निधन के पश्चात् श्री रघुनाथप्रसाद जी पाठक ने बड़ी योग्यता पूर्वक अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद किया। इस समयोचित कार्य के लिए मैं श्री पाठक जी को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। मुझे विश्वास है कि इस लघु पुस्तिका द्वारा जनता यह जानने में समर्थ होगी कि भारत के ही नहीं, यूरोप के विद्वान् भी महर्षि दयानन्द के महान् कार्यों के प्रति किस प्रकार नतमस्तक हैं।

रामगोपाल
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

श्रद्धानन्द बलिदान
दिल्ली
८-३-१९५७

अनुवादक का प्राक्कथन

श्रीयुत स्व० रोमां रोल्या आधुनिक यूरोप के उच्चकोटि के ग्रंथ-कारों और साहित्यिकों में से थे जो यूरोप के महान् मस्तिष्कों का प्रति-निधित्व करने के लिए प्रख्यात हैं। उन्होंने फ्रेंच भाषा में श्री रामकृष्ण परमहंस की जीवनी लिखी जिसके प्रथम भाग का अंग्रेजी अनुवाद कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के श्रीयुत प्रो० ई० ऐफ० मलकौलन स्मिथ एम० ए०, पी-एच० डी० (कैन्टाव) ने किया और जो १९३० में अद्वैत आश्रम मायावती अल्मोड़ा द्वारा प्रकाशित हुआ। इस जीवन चरित्र में विद्वान् ग्रन्थकर्ता ने एकता के निर्माता 'Builders of Unity' शीर्षक में लगभग २५ पृष्ठों में महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के विषय में आलोचनात्मक दृष्टि से विचार किया है। उनका दृष्टिकोण पाश्चात्य था और यहाँ से बहुत दूर बैठे लिख रहे थे। वे सद्भावना रखते हुए भी महर्षि दयानन्द के जीवन के बहुमुखी पार्श्वों का ठीक-ठीक मूल्यांकन करने और प्रकाश में लाने में कहीं-कहीं असमर्थ रहे। फिर भी उन्होंने उपलब्ध सामग्री के आधार पर महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा उसका ऐतिहासिक मूल्य है। कई स्थलों पर तो उन्होंने महर्षि दयानन्द के अभिनन्दन में कलम तोड़ दी है। इस अनुवाद में जो सन्दर्भ हमें अनावश्यक और अप्रासंगिक जान पड़े, वे छोड़ दिये गये हैं और जिनके सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज की स्थिति के स्पष्टीकरण की आवश्यकता अनुभव हुई उनके साथ स्पष्टीकरण दे दिया गया है।

यूरोप के विद्वानों का दयानन्द और आर्यसमाज के सम्बन्ध में

दृष्टिकोण क्या है इसकी जानकारी आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य और प्रेमी को हो जाय और आर्यसमाज के बाहर के लोगों विशेषतः शिक्षित वर्ग को महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज की महत्ता को समझने में सहायता मिल जाय इसी बात को लक्ष्य में रख कर यह प्रयास किया गया है ।

प्रसिद्ध आर्य विद्वान् और नेता श्रीयुत पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए० रिटायर्ड चीफ जज ने इस अनुवाद को देखकर बहुमूल्य निर्देशों से उपकृत किया है जिसके लिए मैं उनका विशेष कृतज्ञ हूं ।

श्रद्धानन्द बलिदान भवन
दिल्ली

—रघुनाथप्रसाद पाठक
९-३-१९५७

द्वितीय संस्करण की भूमिका

'भारत का एक ऋषि' पुस्तक का स्टाक समाप्त हुए पर्याप्त समय हो गया था और तभी से इस पुस्तक की विशेष मांग थी। इस माँग को दृष्टि में रखते हुए यह दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। कागज और छपाई के रेट पूर्वापेक्षा अधिक बढ़ जाने से पुस्तक की छपाई का व्यय बहुत बढ़ गया है और पुस्तक का जो मूल्य रखा गया है वह लागत मात्र ही है। कागज और छपाई की दृष्टि से पुस्तक को अच्छा बनाने का यत्न किया गया है।

आशा है आर्य जनता इस संस्करण को शीघ्र से शीघ्र अपना कर हमें शीघ्र ही तीसरा संस्करण निकालने में समर्थ बनाएगी।

महर्षि दयानन्द भवन
रामलीला मैदान, नई दिल्ली-१
१-९-६१

कालीचरण आर्य
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
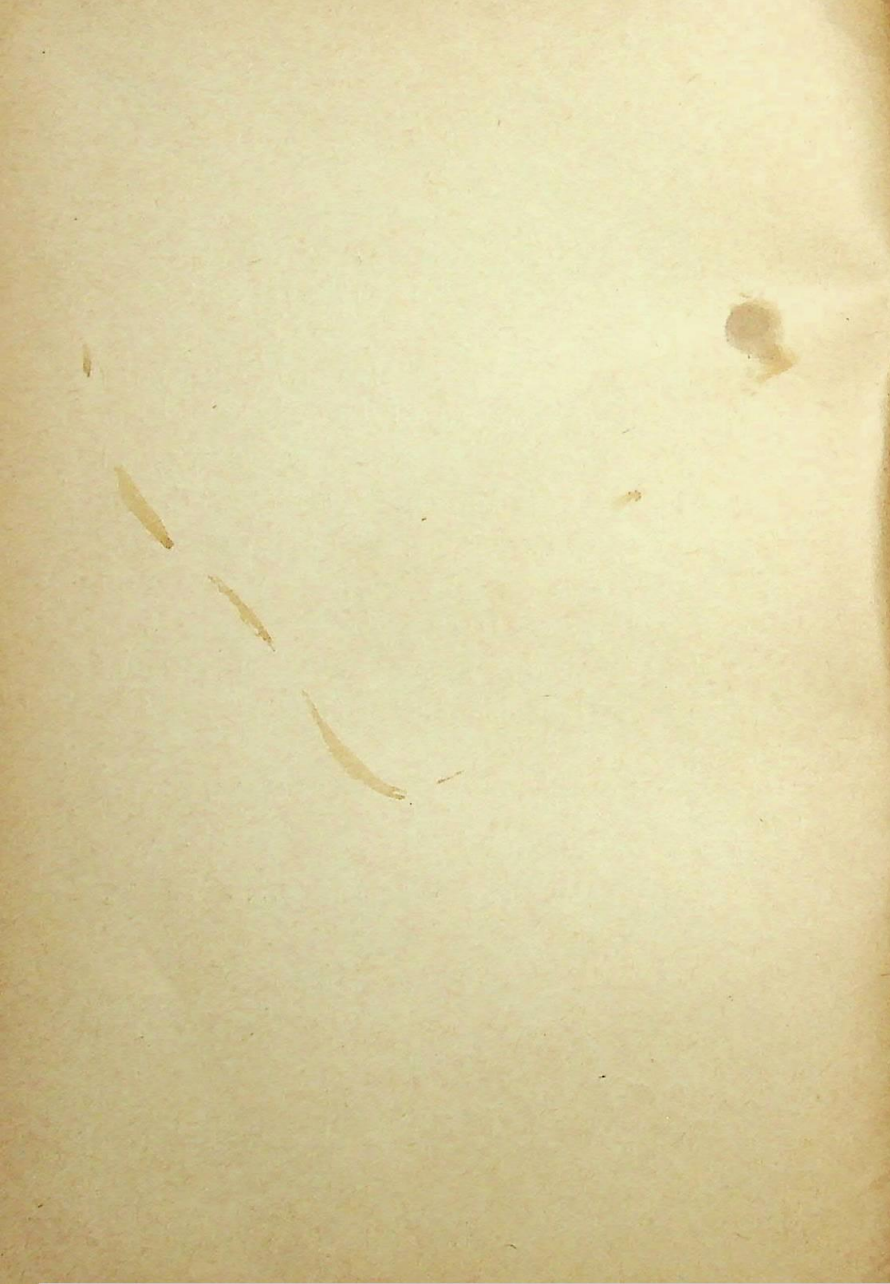
महर्षि दयानन्द के विषय में लेखक के चुने हुए उद्गार

This man (Dayanand) with the nature of a lion is one of those whom Europe is too apt to forget when she judges India, but whom she will probably be forced to remember to her cost, for he was that rare combination, a thinker of action with a genius for leadership. (P. 146)

सिंह समान निर्भीक प्रकृति वाला यह महापुरुष उन व्यक्तियों में था जिन्हें भारत का मूल्याङ्कन करते समय यूरोप भुलाने की चेष्टा करता हुआ भी भुला न सकेगा, क्योंकि ऐसा करना उसके (यूरोप के) लिये महंगा सौदा सिद्ध होगा। इस महान् पुरुष दयानन्द में विचार, कर्म और नेतृत्व की प्रतिभा का अनुपम सम्मिश्रण था।

(2) Dayanand was not a man to come to an understanding with religious philosophers imbued with Western ideas.
(P. 150)

दयानन्द पाश्चात्य विचारों से विमोहित दार्शनिकों के साथ समझौता करने वाले महानुभाव न थे।

(3) It was impossible to get the better of him for he possessed an unrivalled knowledge of Sanskrit and the Vedas while the burning vehemence of his words brought his adversaries to naught. They likened him to a flood. Never since Shankara had such a prophet of Vedism appeared.
(P. 150)

उन (दयानन्द) पर विजय पाना असम्भव था क्योंकि वे वैदिक वाङ्मय और संस्कृत के अनुपम भण्डार थे। उनके शब्दों की धधकती हुई आग से उनके विरोधियों का विरोध भस्मसात हो जाया करता था। वे लोग जल की प्रबल बाढ़ के साथ दयानन्द की तुलना किया करते थे। शङ्कराचार्य के पश्चात् दयानन्द जैसा वेदवित् भारत भूमि में उत्पन्न नहीं हुआ।

(4) Dayanand's stern teachings corresponded to the thought of his countrymen and to the first stirrings of Indian nationalism to which he contributed. (P. 153)

दयानन्द की उग्र और प्रौढ़ शिक्षायें उसके देशवासियों की विचार-धारा के अनुकूल थीं और उन शिक्षाओं से भारतीय राष्ट्रीयता का सर्व-प्रथम नवजागरण हुआ।

(5) The enthusiastic reception accorded to the thunderous champion of the Vedas, a Vedist belonging to a great race and penetrated with the sacred writings of ancient India and with her heroic spirit. is then easily explained. He alone hurled the defiance of India against her invaders. (P. 157)

महान् वीर योद्धा दयानन्द का उत्साहपूर्वक स्वागत होने का कारण इस पृष्ठभूमि के प्रकाश में सहज ही में समझ में आ सकता है कि वे स्वयं वेदों के उग्र प्रचारक थे और वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् और मर्मज्ञ थे। वे ऋषियों की परम्परा के अंग थे और वीर-भावना के साथ प्राचीन भारत के पवित्र ग्रन्थों को साथ लेकर कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने अकेले ही भारत पर आक्रमण करने वालों के विरुद्ध मोर्चा लगाया।

(6) He had no pity for any of his fellow country men past or present who had contributed in any way to the thousand year decadence of India, at one time the mistress of the world. (P. 158)

दयानन्द ने अपने देश के प्राचीन वा अर्वाचीन किसी भी निवासी

को क्षमा नहीं किया जिसने किसी न किसी रूप में उस भारत के १००० वर्ष से हुए पतन में योग दिया था, जो किसी समय संसार का शिरमौर था ।

(7) It was in truth an epoch making date for India when a Brahman not only acknowledged that all human beings have the right to know the Vedas whose study had been previously prohibited by orthodox Brahmans, but insisted that their study and propaganda was the duty of every Arya (P. 159)

सत्य यह है कि भारत के लिए वह दिन एक युग-प्रवर्त्तक दिन था जब एक ब्राह्मण ने न केवल यह स्वीकार किया कि उस वेद-ज्ञान पर मानव मात्र का अधिकार है जिनका पठन-पाठन उनसे पूर्व के कट्टर पन्थी ब्राह्मणों ने निषिद्ध कर दिया था, अपितु इस बात पर भी बल दिया कि वेदों का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म है ।

(8) Dayanand transfused with the languid body of India his own formidable energy, his certainty, his lion's blood. His words rang with heroic power. (P. 161)

दयानन्द ने भारत के निष्प्राण शरीर में अपना अदम्य उत्साह, अपना दृढ़ निश्चयात्मक संकल्प और सिंह जैसा रक्त भर कर उसे सजीव किया । उसके शब्द वीरोचित शक्ति के साथ गूंज गये ।

(9) Above all he would not tolerate the abominable injustice of the existence of untouchables and no body has been a more ardent champion of their outraged rights. They were admitted to the Arya Samaj on a basis of equality. (P. 162-163

सबसे मुख्य बात यह है कि दयानन्द को अस्पृश्यों की विद्यमानता का घृणित अन्याय सर्वथा असह्य था। उनके अपहृत अधिकारों का जितनी उग्रता से दयानन्द ने समर्थन किया उतनी उग्रता से अन्य किसी ने नहीं

किया । अस्पृश्य कहे जाने वाले जन पूरी समानता के आधार पर आर्य-समाज में प्रविष्ट होते हैं ।

(10) He was in fact the most vigorous force of the immediate and present action in India at the moment of the rebirth and reawakening of the national consciousness.

(P. 165)

वस्तुतः भारतीय राष्ट्रीय चेतना के पुनर्जन्म और जागरण में जो इस समय (१९३०) उस देश में अपने पूर्ण यौवन में देख पड़ रही है, सबसे प्रबल प्रेरणा दयानन्द से प्राप्त हुई थी ।

॥ ओ३म् ॥

सामान्य कथा

१—जन्म व गृहत्याग

केशवचन्द्र सेन के ब्राह्मसमाज के प्रभाव का निराकरण करने और भारतवर्ष को पश्चिमी रंग में रंगने वाले समस्त प्रयत्नों को विफल बनाने के लिए भारतीय धार्मिक विचार धारा ने एक विशुद्ध भारतीय समाज को जन्म दिया और उसके शीर्ष स्थान पर दयानन्द सरस्वती के रूप में एक महान् व्यक्तित्व को ला बिठाया।[1]

सिंह समान निर्भीक प्रकृति वाला यह महापुरुष उन व्यक्तियों में था जिन्हें भारत का मूल्यांकन करते समय यूरोप भुलाने की चेष्टा करता हुआ भी भुला न सकेगा क्योंकि ऐसा करना उस (यूरोप) के लिए मंहगा सौदा सिद्ध होगा। इस महान् पुरुष में विचार, कर्म और नेतृत्व की प्रतिभा का अनुपम सम्मिश्रण विद्यमान था।

दयानन्द का प्रादुर्भाव गुजरात की भूमि में हुआ था जिसने ५० वर्ष के पश्चात् गांधी जी को जन्म दिया। दयानन्द का जन्म मौरवी (काठियावाड़) राज्य के एक संपन्न और प्रतिष्ठित सामवेदीय ब्राह्मण परिवार में

१—उनका वास्तविक नाम जिसका उन्होंने संन्यास लेने पर स्वयं परित्याग कर दिया था मूलशंकर था। सरस्वती उनके गुरु का उपनाम था जिनको वे अपना सच्चा पिता मानते थे। दयानन्द की जीवनी के लिए श्रीयुत स्व० ला० लाजपतराय (महान् भारतीय राष्ट्रीय नेता) का सुप्रसिद्ध ग्रंथ The Arya SamaJ (दी आर्य समाज) पढ़ना आवश्यक हैं, जिसकी भूमिका श्रीयुत सिडनी वेब ने लिखी है और जो लांग मैंस, ग्रीन एण्ड को० (लन्दन) द्वारा १९१५ में प्रकाशित हुआ था।

हुआ था। उनके पिता एक राज्य कर्मचारी थे जो शिव के परम भक्त थे। उनकी प्रकृति कठोर थी इसलिए बालक दयानन्द का पालन-पोषण धार्मिक कट्टरता के वातावरण में हुआ। ८ वर्ष की आयु में उसका उपनयन संस्कार किया गया और इस संस्कार से सम्बद्ध नियन्त्रण[२] का उससे भली-भाति पालन कराया गया। ऐसा लगता था मानो वह अपने पिता का स्थान ग्रहण कर लेने पर धार्मिक कट्टरता का स्तम्भ बनेगा परन्तु ऐसा बनने के स्थान में वह सैमसन[३] (Samson) बन गया जिसने मन्दिरों की नींव हिला दी। मानवीय प्रयत्न की विफलता के अनेक उदाहरणों में से यह एक अत्यन्त आश्चर्यजनक उदाहरण है, जबकि यह कल्पना कर ली जाती है कि बलात् लादी हुई शिक्षा के साँचे में नवयुवकों के मस्तिष्कों का ढाला जाना और उनके भविष्य का निर्माण किया जाना सम्भव हैं। इसका सुनिश्चित परिणाम क्रान्ति होती है। दयानन्द की क्रान्ति उल्लेखनीय है। जब वह चौदह वर्ष का था तब उसके पिता शिवरात्रि का व्रत रखने के लिए उसे एक मन्दिर में ले गए। उसने वहां व्रत रख कर समस्त रात्रि जागते हुए व्यतीत की। अन्य सब भक्तजन सो गये। सहसा ही उसने एक चूहे को भोग की सामग्री खाते और शिव की मूर्ति पर दौड़ते हुए देखा। बस यह पर्याप्त था। बच्चे के हृदय में उत्पन्न हुई नैतिक क्रान्ति के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। क्षण भर में ही उसकी श्रद्धा मूर्ति-पूजा पर से हट गई और

२—इस नियन्त्रण का अभिप्राय है विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य, सदाचार, पवित्रता और सादगी का जीवन व्यतीत करना, वेदों का स्वाध्याय करना और खान-पान इत्यादि में संयम से रहना।

३—रोम का प्रसिद्ध शक्तिशाली देवता जिसने अपनी शारीरिक शक्ति के प्रयोग से एक पूरे शहर को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला था। यह बाइबिल के प्रसिद्ध कथानक का नायक है जो सैमसन एण्ड डिलैला के नाम से प्रख्यात है।

वह आजन्म हटी रही । रात में ही वह मन्दिर छोड़कर घर चला गया और उसने उसी समय से पौराणिक कर्मकांड का परित्याग कर दिया ।[४]

यह घटना पिता और पुत्र में भयंकर संघर्ष उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त थी । दोनों में संघर्ष होकर रहा । दोनों ही स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे जिसके कारण पारस्परिक समझौते के द्वार बन्द हो गए ।

२१ वर्ष की आयु में बालक दयानन्द बलात् किये जाने वाले विवाह से बचने के लिए घर से भाग गया और पकड़ा जाकर पिता की कैद में रखा गया । वह पुनः भागा और इस बार सदैव के लिए (१८४५) भाग गया । उसे फिर कभी अपने पिता के दर्शन न हो सके ।

गुरु विरजानन्द की शिक्षा

प्रत्येक वस्तु से वंचित और भिक्षा पर अवलम्बित सम्पन्न घराने का यह ब्राह्मण कुमार भगवा वस्त्र धारण किए हुए साधु वेष में १५ वर्ष तक भारत में भ्रमण करता फिरा । दयानन्द ने विद्वानों, तपस्वियों और योगियों की खोज में खाक छानी । वह भारत के प्रत्येक तीर्थ पर गया और धार्मिक जिज्ञासाओं में रत रहा । उसे अनेक कष्ट सहन करने पड़े । भूख का, अपमान का और खतरों का सामना किया । वह अर्से तक जन-साधारण से दूर रहा क्योंकि वह संस्कृत के अतिरिक्त अन्य कोई भाषा न बोलता था । दयानन्द ने अपने चारों ओर अज्ञान, अंधविश्वास, गुरुडम, पाखंड और सहस्रों लक्षों मूर्तियाँ देखीं जिनसे उसे घृणा हो गई । अन्त में १८६० के आसपास दयानन्द को मथुरा में एक बूढ़े संन्यासी मिले जो अन्धविश्वास और मानवीय दुर्बलताओं का खण्डन करने में दयानन्द से भी उग्र थे । बचपन से ही उनके नेत्रों की ज्योति जाती रही थी और ११ वर्ष की आयु में ही वे आश्रयहीन होकर घर से निकल पड़े थे । वह

४—आर्यसमाज इस रात्रि को 'दयानन्द-बोध रात्रि' के रूप में मनाता है ।

उद्‌भट विद्वान और उग्र प्रकृति के महानुभाव थे। उनका नाम विरजानन्द सरस्वती था। दयानन्द ने अपने को उनके नियन्त्रण में रखा जिसने १७वीं शताब्दी की प्राचीन भावना के अनुसार उसके शरीर और आत्मा को ब्रह्मचर्य और ज्ञान की भट्ठी में तपाकर बलवान बना दिया।

दयानन्द ने २॥ वर्ष तक इस अजेय पुरुष की शिष्य के रूप में सेवा की। अतः यह स्मरण रखना युक्तिसंगत होगा कि दयानन्द का इसके बाद का कार्यक्रम इस उग्र प्रज्ञाचक्षु की इच्छा-पूर्ति पर केन्द्रित रहा। जब दयानन्द ने अपने गुरु से विदा ली तो उन्होंने अपने शिष्य से तीन प्रतिज्ञाएं कराईं :—

(१) वैदिक धर्म में प्रविष्ट हुई पौराणिक अनर्गलताओं का विनाश।

(२) गौतम बुद्ध से पूर्व के युग की प्राचीन धार्मिक प्रणालियों की पुनः स्थापना।

(३) सत्य का प्रकाश और प्रचार।

दयानन्द ने गुरुदेव से विदा लेते ही उत्तर भारत में प्रचार कार्य आरम्भ कर दिया परन्तु परमात्मा के उन दयालु मनुष्यों की परम्परा के विपरीत जो अपने श्रोताओं के नेत्रों के समक्ष स्वर्ग के लुभावने दृश्य उपस्थित करते रहते हैं, गीता के वीर नायक अथवा इलियड के हरक्यूलस[५] जैसे महान् पराक्रमी वीर दयानन्द ने अपने एकमात्र सत्य विचार के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के वेद-विरुद्ध विचारों को चुनौती दी।

वे अपने काम में इतने सफल हुए कि ५ वर्ष के अल्प काल में ही

५—दयानन्द की शारीरिक शक्ति के चमत्कारों ने उपमाओं का रूप लिया हुआ है। उन्होंने एक बग्घी में जुड़े हुए दो घोड़ों की प्रबल गति को एक हाथ से रोक दिया था। एक बार एक विरोधी दुष्ट के हाथ से नंगी तलवार छीनकर अपने हाथ से उसके दो टुकड़े कर दिये थे। उनकी गरजती हुई आवाज कोलाहल में भी स्पष्ट सुनाई पड़ती थी।

उत्तर भारत की काया पलट हो गई। इन ५ वर्षों में ४ या ५ बार विष द्वारा उनके प्राण लेने की चेष्टा की गई। एक बार एक मजहबी पागल ने शिव के नाम पर दयानन्द के ऊपर एक भयंकर विषधर फेंका परन्तु उन्होंने इस सर्प को पकड़कर तत्काल अपने पैर से कुचल दिया। दयानन्द पर विजय प्राप्त करना असम्भव था क्योंकि वे वैदिक वाङमय और संस्कृत के अनुपम भण्डार थे और उनके ज्ञान की बराबरी कोई न कर पाता था। उनके शब्दों की धधकती हुई आग से उनके विरोधियों का विरोध भस्मसात हो जाया करता था। वे लोग दयानन्द की तुलना जल की बाढ़ के साथ किया करते थे। शंकराचार्य के बाद दयानन्द जैसा वेदवित भारत भूमि में उत्पन्न नहीं हुआ।

३—काशी शास्त्रार्थ

शास्त्रार्थ में पराजित हुए पौराणिक पंडितों ने दयानन्द को अपने रोम (बनारस) में आने के लिए आमंत्रित किया। दयानन्द निर्भयता पूर्वक वहां गए और १८६९ के नवम्बर मास में उस महान् शास्त्रार्थ में प्रवृत्त हुए जिसकी तुलना होमर के काव्य में वर्णित संग्राम के साथ की जा सकती है। लाखों आक्रान्ताओं के सामने जो उन्हें परास्त करने के लिए उत्सुक थे उन्होंने अकेले ३०० पंडितों के साथ शास्त्रार्थ किया दूसरे शब्दों में पोप गढ़ की अग्रगामिनी और सुरक्षित दोनों सेनाओं के साथ[६]। दयानन्द ने यह सिद्ध किया कि जिन ग्रंथों पर आचरण किया जाता है वे वेदानुकूल नहीं हैं। उन्होंने अपना आधार वेद को बनाया हुआ था। पंडितों का धीरज टूटते हुए देर न लगी। उन्होंने दयानन्द का परिहास और बहिष्कार किया। दयानन्द को अपने चारों

६—इस प्रतियोगिता को एक ईसाई मिशनरी ने दर्शक के रूप में देखा था। उसने इसका निष्पक्ष और उत्कृष्ट वर्णन किया है जिसे लाला लाजपतराय ने अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है।

(क्रिश्चियन इन्टैलीजेन्स कलकत्ता मार्च १८७० ई०)

ओर निराशा के बादल छाए हुए देख पड़े परन्तु महाभारत जैसे इस संघर्ष की प्रतिध्वनि से समस्त भारत गूँज उठा जिसका परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष में उनका नाम प्रसिद्ध हो गया।

४—कलकत्ते की यात्रा और ब्राह्मसमाज का प्रभाव

१५ दिसम्बर १८७२ से १५ अप्रैल १८७३ तक

दयानन्द कलकत्ता में विराजे और वहां ही रामकृष्ण परमहंस ने उनसे भेंट की। ब्राह्मसमाज ने भी उनका हार्दिक स्वागत किया। केशव (चन्द्र) और उनके अनुयायियों ने जान-बूझ कर उन मतभेदों की उपेक्षा की जो उनमें और दयानन्द में विद्यमान थे। धार्मिक रूढ़ियों और मूर्ति-पूजा के विरुद्ध छेड़े हुए अपने धर्म-युद्ध के लिए दयानन्द उन्हें बड़े उपयुक्त साथी जान पड़े परन्तु दयानन्द पाश्चात्य विचारों से विमोहित दार्शनिकों के साथ समझौता करने वाले महानुभाव न थे। उनकी आस्तिकता और फौलाद जैसी दृढ़ वेद-निष्ठा ब्राह्मसमाजियों के सिद्धान्तों के साथ मेल न खाती थी जो संशयवाद में ग्रस्त थे और वेदों की अपौरुषेयता एवं आवा-गमन के सिद्धान्त को स्वीकार न करते थे।[७]

इस पर दयानन्द और ब्राह्मसमाज ने अपना-अपना रास्ता पकड़ा परन्तु केशवचन्द्र सेन के एक सुझाव को उन्होंने स्वीकार किया और वह यह था कि जब तक वे जन-सामान्य की भाषा में अपना प्रचार न करेंगे तब तक उनके प्रचार का प्रभाव व्यापक न होगा। सैद्धान्तिक मतभेद के कारण अलग हो जाने पर भी दयानन्द कलकत्ता से कुछ लेकर ही

७—लाला लाजपतराय के कथनानुसार, जो स्वयं आर्यसमाज के साथ सम्बद्ध थे, वेदों की अपौरुषेयता और आवागमन आर्यसमाज और ब्राह्मसमाज में भेद करने वाले आर्यसमाज के दो प्रमुखतम मौलिक सिद्धान्त हैं।

निकले ।[८] इसके पश्चात् दयानन्द बम्बई गए जहां कुछ समय के उपरांत उनका समाज संगठन की प्रखर प्रतिभा के साथ चमकता हुआ भारत के सामाजिक जीवन में जड़ जमाने लग गया । उन्होंने ७ अप्रैल १८७५ ई० को अपने सर्वप्रथम आर्यसमाज अर्थात् श्रेष्ठ व्यक्तियों की सोसाइटी की स्थापना की । १८७७ से लेकर (जब लाहौर में आर्यसमाज के नियम अन्तिम रूप से निश्चित हुए थे) १८८३ तक दयानन्द ने राजपूताना, उत्तर प्रदेश, गुजरात और पंजाब में नई आर्यसमाजों का जाल बिछा दिया । उनके प्रचार से लगभग समस्त भारत प्रभावित हुआ । एक प्रांत जहां उनका प्रभाव जड़ न जमा सका, मदरास प्रान्त था । (इस प्रान्त में महर्षि दयानन्द को जाने का समय न मिल सका था । यदि वे जीवित रहते तो अवश्य इस प्रान्त में भी उनके प्रभाव की जड़ जम जाती—संपादक)

एक हत्यारे ने असमय में ही उनकी पार्थिव लीला समाप्त कर दी । एक महाराजा की रखैल ने जिसकी दयानन्द ने निर्भीकता से कठोर भर्त्सना की थी, उन्हें जहर दे दिया । ३० अक्टूबर १८८३ को अजमेर में उनके जीवन का अन्त हुआ ।

परन्तु उनका छोड़ा हुआ कार्य द्रुतगति से आगे बढ़ता गया । १८९१ में सरकारी गणना के अनुसार आर्यसमाज के सदस्यों की संख्या ४०००० थी । १९०१ में यह संख्या एक लाख, १९११ में २४३००० और १९२१ में ४ लाख ६८ हजार हो गई । (१९३१ में यह संख्या लगभग १० लाख थी । इस समय यह संख्या ८० लाख से कम नहीं है—संपादक) आर्यसमाज में बड़े-बड़े व्यक्ति, विद्वान, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ और प्रसिद्ध

८—१८७७ में दयानन्द ने विविध धार्मिक नेताओं और उनके विविध सिद्धान्तों के मध्य पारस्परिक समझौते का आधार ढूंढ़ निकालने के उद्देश्य से एक सम्मेलन दिल्ली में बुलाया था । इस सम्मेलन में दयानन्द वेद के विरुद्ध पीछे पग बढ़ाने के लिए उद्यत न थे ।

राजा-महाराजा सम्मिलित हैं। केशव के ब्राह्मसमाज की आंशिक प्रति-ध्वनि के विरुद्ध आर्यसमाज की स्वतः प्रेरित उत्साहपूर्ण सफलता से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि **दयानन्द की प्रौढ़ शिक्षाएं उनके देश-वासियों की विचारधारा के बहुत अनुकूल थीं और उन शिक्षाओं से भारतीय राष्ट्रीयता का सर्वप्रथम नव जागरण हुआ।**

भारतीय राष्ट्रीय चेतना की प्रबल बाढ़ में जो कारण काम कर रहे थे उनका यूरोप को स्मरण करा देना कदाचित् उपयोगी होगा। दयानन्द के प्रादुर्भाव के समय भारत पाश्चात्यता के रंग में रंगा हुआ था और उसका सर्वोत्तम पक्ष अन्धकार में विलीन था। लोगों की बुद्धि विकृत होकर उसमें मानसिक दासता घर कर गई थी और उनकी स्वतन्त्र विचार-शक्ति को पाला मार गया था। नवयुवकों का बौद्धिक दृष्टिकोण भ्रष्ट हो जाने से वे लोग अपनी जातीय प्रतिभा से घृणा करने लग गए थे। फलतः आत्म-सुरक्षा की भावना ने विद्रोह कर दिया। दयानन्द ने और उनकी पीढ़ी ने एक ओर प्रजा के कष्टों को, उनके रोष को और उथले यूरोपीय बुद्धिवाद को भारतीय धमनियों में धीरे-धीरे प्रविष्ट होते हुए देखा जो अपनी अहम्मन्यता के कारण भारतीय भावना को जरा भी न समझ पाया था और दूसरी ओर ईसाइयत को देखा जो पारिवारिक जीवन में प्रविष्ट हो जाने पर ईसा की इस भविष्यवाणी को चरितार्थ कर रही थी कि मैं बाप और बेटे को एक-दूसरे से पृथक् करने के लिए आया हूँ। यह ऐतिहासिक सत्य है कि जब दयानन्द के मस्तिष्क का निर्माण हो रहा था तब भारत की उच्चतम धार्मिक भावना इतनी जर्ज-रित हो चुकी थी कि यूरोप की धार्मिक भावना उसकी सन्तोषजनक पूर्ति किये बिना उसके टिमटिमाते दिये को बुझाने की धमकी दे रही थी। ब्राह्मसमाज इस दुरवस्था पर दुःखी था परन्तु उस पर जान में या अनजान में ईसाइयत की छाप लग गई थी। राममोहनराय की प्रवृत्ति सुधरे हुए अद्वैतवाद की ओर प्रेरित थी। देवेन्द्रनाथ में, यद्यपि उन्होंने इस बात को अस्वीकार किया है, ब्राह्मसमाज में ईसाइयत के प्रवेश को

रोकने की क्षमता न थी। जब उन्होंने समाज की बागडोर केशवचन्द्र को सौंपी तब उसका लगभग तीन-चौथाई भाग ईसाइयत में विलीन हो चुका था। १८८० में केशव के एक आलोचक ने कहा था कि केशव में आस्था रखने वाले लोगों ने ईश्वर के नाम को भी भुला दिया है क्योंकि वे ईसाइयत की ओर अधिकाधिक झुकते जाते हैं।[१] ५० वर्ष के काल में ब्राह्मसमाज के मौलिक सिद्धान्तों में दो बार परिवर्तन हो जाने से लोगों की उसके प्रति श्रद्धा नष्ट हो गई थी। बाद में यह समाज पूर्णतया ईसाइयत में विलीन हो गया था। महान् वीर योद्धा दयानन्द का उत्साह पूर्वक स्वागत होने का कारण इस पृष्ठभूमि के प्रकाश में सहज ही समझ में आ सकता है। वे स्वयं वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् और मर्मज्ञ थे। वे ऋषियों की परम्परा के अंग थे और वीर भावना के साथ प्राचीन भारत के पवित्र ग्रन्थों को लेकर कार्य-क्षेत्र में अवत्तीर्ण हुए थे। उन्होंने अकेले ही भारत पर आक्रमण करने वालों के विरुद्ध मोरचा लगाया। उन्होंने ईसाइयत के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की और उनकी भारी विशाल तलवार ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उन्होंने अपने प्रहारों के औचित्य और सीमा को भी ध्यान में न रखा।

५—बाइबिल की आलोचना

उन्होंने बाइबिल की पृथक्-पृथक् आयतों की समीक्षा करके ईसाई मत की अनुचित एवं हानिकारक समीक्षा की है और उसके वास्तविक अर्थ के साथ भी अन्याय हो गया है क्योंकि उन्होंने हिन्दी का बाइबिल पढ़ा था। (बाइबिल का हिन्दी अनुवाद स्वयं ईसाइयों के बड़े पादरियों

१—फ्रैंक लिलिंगटर्न—ब्राह्मसमाजियों और आर्यों का ईसाइयत के प्रति रुख १९०१ ई०।

Frank Lillingtorn—The Brahmo and Arya in their relations to Christianity 1901.

द्वारा किया हुआ था जिन्हें पढ़कर स्वामी जी को शंका हुई और उन्होंने इसकी समीक्षा की। स्वामी जी की आलोचना का लक्ष्य यह देखना-दिखाना था कि यह ग्रन्थ निर्दोष और ईश्वर-कृत है या नहीं, किसी का दिल दुखाना न था। स्वामी जी की आलोचना को उनकी इसी भावना के परिपेक्ष्य में ग्रहण करना उचित है। वे अपनी आलोचना में बहुत सफल हुए और उन्होने यह सिद्ध कर दिया कि बाइबिल न तो निर्दोष है और न ईश्वर-कृत है—सम्पादक) दयानन्द की बाइबिल की आलोचना वॉल्टेयर और उनकी Dictionnaire Philosophique का स्मरण करा देती है जो दुर्भाग्य से कतिपय आधुनिक हिन्दुओं की[१०] ईसाइयत विरोधिनी आलोचना का शस्त्रागार बन गई है। उस पर भी जैसा कि ग्लैसनप्प ने ठीक कहा है कि यह आलोचना यूरोपीय ईसाइयत के लिए स्थिर मूल्य की है जिसे यह जानना चाहिए कि एशियाई विरोधियों ने उसका कैसा चित्र प्रस्तुत किया है।

६—पुराणों पर प्रहार

दयानन्द के हृदय में कुरान और पुराणों के प्रति भी विशेष सम्मान का भाव न था और उन्होंने ब्राह्मणों के गुरुडम को पैरों तले कुचल डाला था। **दयानन्द ने अपने देश के प्राचीन वा अर्वाचीन किसी भी निवासी को क्षमा नहीं किया जिसने किसी न किसी रूप में भारत के पतन में योग दिया था जो किसी समय संसार का शिरमौर**

१०—सार्वभौम शान्ति और निर्लेपता की भावना को मूर्त्त रूप देने वाले बुद्ध के अनुयायी इन दिनों आक्रमणात्मक प्रचार के मार्ग पर चल रहे हैं।

था[११] । वे सच्चे वैदिक धर्म को विकृत करने वालों की बड़ी तीखी आलोचना करते थे ।[१२] उन्हें लूथर के समान अपने पथ-भ्रष्ट पोपों (पौराणिक ब्राह्मणों) के साथ भीषण युद्ध करना पड़ा । उन्होंने वेदों का संस्कृत में भाष्य और भाषा में अनुवाद किया ।[१३] उन्होंने ही सर्व-प्रथम वेदों के जल-स्रोत को सबके लिए खुलवाया जिससे वे स्वयं अपनी

११—दयानन्द द्वारा प्रस्तुत भारतीय इतिहास का चित्र बड़ा मनोरंजक है । सृष्टि के आदि में आर्य जन भारत में ही आकर बसे थे । आर्य नाम उत्तम पुरुष का है और आर्यों से भिन्न मनुष्यों का नाम दस्यु है । भारत ऐसा देश है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है । सृष्टि से लेकर ५००० वर्ष पूर्व तक आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य था । उनके मतानुसार भारत का अभाग्योदय और वैदिक भावना का ह्रास महाभारत से १००० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ जिसमें भारत के सर्वस्व का ही स्वाहा हो गया । महाभारत के समय और उसके पश्चात् भारत में जो जड़ पूजा व्याप्त हो गई थी दयानन्द को न केवल उससे ही अपितु जैन मत से भी घृणा हो गई थी । शंकर के सम्बन्ध में उनकी धारणा थी कि वे हिन्दुओं के आत्मिक क्षेत्र में हुए सर्वप्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम में चमकते हुए परन्तु अभागे नायक थे । शंकर पाखण्ड का विनाश करना चाहते थे परन्तु वे असफल रहे । वे संग्राम के बीच में ही मर गये । वे स्वयं माया में फंसे रहे जिसने दयानन्द में (जो स्वप्नद्रष्टा ही न थे अपितु जो वास्तविकता की भूमि में पल्लवित दृढ़ वृक्ष के समान थे) ग्लानि उत्पन्न की हुई थी ।

१२--वे मूर्ति-पूजा को पाप और ईश्वरावतार को अनर्गलता मानते थे ।

१३—१८७६ से १८८३ के बीच में उन्होंने इस काम में अनेक पंडित लगाये । दयानन्द सँस्कृत में लिखते और पंडित जन लोकभाषा में अनुवाद करते थे । मूल भाष्य दयानन्द का ही होता था । उनके भाष्य का क्रम जिसे दुहराने का उन्हें समय नहीं मिला था यह रहता था कि पहले वह मन्त्र का अन्वय करते थे, बाद में उसका भावार्थ स्पष्ट करते थे ।

प्यास बुझा सकें। सत्य यह है कि भारत के लिए वह दिन युग-प्रवर्त्तक था जिस दिन एक ब्राह्मण ने न केवल यह स्वीकार किया कि वेदों का ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार मनुष्य मात्र का है जिनका पठन-पाठन उनसे पूर्व कट्टर ब्राह्मणों ने निषिद्ध कर दिया था अपितु इस बात पर भी बल दिया कि वेदों का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म है (देखें आर्यसमाज का नियम ३) [१४] यह सत्य है कि दयानन्द का वेदों का अनुवाद, अनुवाद नहीं अपितु भाष्य है

१४—एक विचित्र घटनाचक्र के अनुसार दयानन्द ने एक पाश्चात्य समाज के साथ जिसका नाम थियोसोफीकल सोसायटी था अपना सम्बन्ध जोड़ा और वह सम्बन्ध १८७९ से १८८१ तक बना रहा। इस सम्बन्ध का आधार ईसाइयत की बढ़ती हुई बाढ़ से वेदों का रक्षण था। थियोसोफीकल सोसायटी एक रूसी महिला मैडम ब्लावटस्की तथा अमेरिकन कर्नल अलकाट के द्वारा अमेरिका में १८७५ में संस्थापित हुई थी। सन् १८७९ में संस्थापक भारतवर्ष में आकर रहने लगे थे और सोसायटी का समाज से सम्बन्ध हो चुका था। इस सोसायटी से हिन्दुओं को अपने धर्म-शास्त्रों विशेषत: गीता और उपनिषदों के पठन-पाठन की बड़ी प्रेरणा मिली जिनके कर्नल अलकाट ने संस्कृत में संग्रह छपवाये। इसने मुख्यतया लंका में भारतीय शिक्षणालयों की स्थापना का भी आन्दोलन किया और अछूतों के लिए शिक्षणालयों के खुलवाने का साहस किया। इस प्रकार इसने भारत की राष्ट्रीय, धार्मिक और सामाजिक जागृति में योगदान दिया। दयानन्द ने भी इस सोसायटी के साथ मिलकर काम करना चाहा। परन्तु जब सोसायटी ने अपना नियमित योग देने का दयानन्द को निमन्त्रण दिया तो उन्होंने इन्कार कर दिया और इस प्रकार यह सोसायटी भारत के आध्यात्मिक प्रभुत्व के अवसरों से वंचित रह गई। (सोसायटी के पुरस्कर्ताओं का मिथ्या व्यवहार, ढोंग और अन्धविश्वासों के प्रचार के लिए आर्यसमाज का दोहन करने का प्रयास आदि-आदि

उसकी और प्रामाणिकता[१५] बेदों की अपौरुषेयता, दयानन्द की कठोर प्रणाली, उनके युद्धघोष[१६] और उनके राष्ट्रीय उपास्य

अनेक कारण थे जिनकी प्रामाणिकता सिद्ध हो जाने पर महर्षि दयानन्द के सामने इस सोसाइटी से अपना सम्बन्ध-विच्छेद करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प न रह गया था—सम्पादक) ऐंग्लो अमेरिकन तत्त्व ने जिसका पूर्व और पश्चिम के इस आश्चर्यजनक सम्मिश्रण में प्राधान्य था अपनी उच्च परन्तु हेय भावना के द्वारा हिन्दू अध्यात्म-विद्या की उदार और व्यापक कार्य-प्रणाली को अजीब ढंग से तोड़-मरोड़ दिया था। इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि इस सोसायटी ने अपने को निर्भ्रान्त धर्माध्यक्ष का स्वरूप प्रदान किया था जिसके विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती थी। यह स्वरूप यद्यपि कम निर्दयतापूर्ण न था और भारतीय स्वतन्त्र मस्तिष्क को इसी रूप में देख पड़ा था। स्वयं विवेकानन्द जी ने अमेरिका से लौटने पर स्पष्ट रूप से इस स्वरूप का खण्डन किया था। (स्वामी दयानन्द जी ने बहुत पहले से ही इस स्वरूप को जान लिया था—सम्पादक)

१५—उनकी प्रबल वेद-निष्ठा के विरुद्ध नहीं जो समस्त आक्रमणों के विरुद्ध प्रबल ढाल का काम देती है।

१६—दयानन्द सत्यार्थप्रकाशके अन्त में दिये हुए अपने एक मन्तव्य में निर्देश देते हैं :—मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे : अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों उनकी रक्षा उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे सनाथ महा बलवान् और गुणवान हो तथापि उनका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख

देव[१७] के पक्ष और विपक्ष में भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। दयानन्द **ने भारत के निष्प्राण शरीर में अपना अदम्य उत्साह,** दृढ़ निश्चयात्मक **संकल्प और सिंह समान रक्त भर कर उसे सजीव किया।** उसके शब्द **वीरोचित शक्ति के साथ गूंजे।** उन्होंने भाग्य के भरोसे बैठे और सांसारिक निष्क्रियता में डूबे हुए अपने देशवासियों को स्मरण कराया कि आत्मा कर्म करने में स्वतन्त्र है और कर्मों से ही प्रारब्ध बनता है। प्रारब्ध कर्मों का फल होता है। हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से कर्म करना और सत्कर्म करना उच्च होता है। दयानन्द ने विशेषाधिकार और पक्षपात की घास को साफ करके मार्ग को परिष्कृत करने का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत

प्राप्त हो चाहे प्राण भी चले ही जायें परन्तु इस मनुष्यरूप धर्म से कभी पृथक् न होवे।

१७—आर्यसमाज वेदों द्वारा प्रतिपादित परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करेगा। ईश्वर तथा सांसारिक पदार्थों की जो भावना वेदों तथा शास्त्रों में निहित है मैं उसी को मन्तव्य समझता हूं। दयानन्द का राष्ट्रवाद सार्वभौम था। आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है संसार का उपकार करना अर्थात् शारीरिक, मानसिक और सामाजिक उन्नति करना।

(आर्यसमाज का नियम सं० ६)

सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् सार्वभौम धर्म जिसको सदा से सब मानते आए हैं और मानेंगे भी इसलिए उसको सनातन नित्य धर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न हो सके इसी को मैं धर्म मानता हूँ। दयानन्द सत्य का प्रेमी था। उनके मतानुसार परीक्षा पांच प्रकार की है। इसमें से प्रथम जो ईश्वर उसके गुण कर्म स्वभाव और वेद विद्या, दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, तीसरी सृष्टिक्रम आप्तों का व्यवहार अपनी आत्मा की पवित्रता विद्या इन पांच परीक्षाओं से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना चाहिए।

किया । दयानन्द की आध्यात्मिकता शुष्क और गूढ़ देख पड़ती है[१८] ।
(महर्षि दयानन्द की आध्यात्मिकता की उच्चता के विषय में योगी
अरविन्द कहते हैं कि "दयानन्द वे महानुभाव थे जिन्होंने वस्तुओं की
आत्मा पर अपना अनिश्चित और अनौपचारिक प्रभाव नहीं डाला अपितु
जिन्होंने मनुष्यों और वस्तुओं पर अपने व्यक्तित्व की ऐसी छाप डाली
जो मिट नहीं सकती । दयानन्द वह व्यक्ति था जिसे अपने काम का
निश्चित ज्ञान था और जिसके लिए वह इस संसार में भेजा गया था ।
उन्होंने अपने साधन स्वयं चुने और प्रबलतम आत्म-अनुभूति के साथ
अपने वातावरण का निर्माण किया और जन्मजात नेता के रूप में वीरता-
पूर्वक अपनी भावना को क्रियात्मक रूप दिया । उन्होंने मेरे मन पर जो
सबसे बड़ी छाप डाली वह एक शब्द में यह थी कि दयानन्द ने आध्या-
त्मिकता को मूर्त्त रूप दिया"—संपादक)

समस्त मानव समाज पर वेदों को लागू करने के अपने अधिकार को वह
(दयानन्द) क्योंकर छोड़ सकते थे जब कि वे यह मानकर चले थे जैसा
कि अरविन्द घोष कहते हैं कि 'वेदों में धार्मिक, सांसारिक और वैज्ञा-
निक सत्य बीज रूप में विद्यमान है । वेद की शिक्षा एकेश्वरवाद की
शिक्षा है और वेद के देवता परमात्मा के विविध वर्णनात्मक नाम हैं ।
साथ ही वे प्रकृति में काम करने वाली उसकी शक्तियों के सूचक हैं ।
वेदों के सच्चे ज्ञान से हम उन सब वैज्ञानिक सच्चाइयों पर पहुंच सकते
हैं जो आज की गवेषणा से ज्ञात हुई हैं । (दी सीकरेट ऑव दी वेद,
आर्य पत्र नवम्बर १९१४ पांडेचरी) दयानन्द के वैदिक राष्ट्रीय विवरणों
की ट्रैक्टों के रूप में एक बाढ़ सी आ गई थी जिनका उद्देश्य प्राचीन
भारत के ज्ञान-विज्ञान, कर्मकांड और अनुष्ठान का पुनरुज्जीवन था ।
उनसे पश्चिम के विचारों के विरुद्ध अच्छा वातावरण तैयार हुआ था ।
(प्रबुद्ध भारत नवम्बर १९२८)

१८—दयानन्द ईश्वर, जीव और प्रकृति को अनादि नित्य सत्ताएं
और प्रकृति को सृष्टि का उपादान कारण मानते हैं । ईश्वर

७—सामाजिक सुधार

आर्यसमाज सिद्धान्त रूप में स्त्री, पुरुष और समस्त मानव समाज की समानता के न्याय में विश्वास रखता है। वह जन्मना जातपांत की प्रथा का खण्डन करके गुण-कर्मानुसार वर्ण-विभाजन को स्वीकार करता है अर्थात् समाज में रुचि और योग्यता के अनुसार कार्य-विभाजन होना चाहिए और उसके लक्ष्य में समाज और राष्ट्र की सेवा होनी चाहिए। राज्य ही समाज के कल्याणार्थ पारितोषिक व दण्ड के रूप में किसी व्यक्ति को उच्च वा हेय वर्ण में उन्नत या अवनत कर सकता है। दयानन्द की कामना थी कि प्रत्येक व्यक्ति को अधिकाधिक ज्ञान प्राप्ति का अवसर मिलना चाहिए जिससे वह समाज में अधिक से अधिक ऊँचा उठ सके। **सबसे अधिक उन्हें अस्पृश्यों की विद्यमानता का घृणित अन्याय सह्य न था। उनके (अस्पृश्यों के) अपहृत अधिकारों का जितनी उग्रता से दयानन्द ने समर्थन किया उतनी उग्रता से अन्य किसी ने नहीं किया। अस्पृश्य लोग समानता के आधार पर आर्यसमाज में प्रविष्ट होते हैं** क्योंकि आर्य कोई जाति नहीं है। वेदानुकूल श्रेष्ठ कर्म करने वाले को आर्य और पाप एवं दुष्टता का जीवन व्यतीत करने वाले को दस्यु कहते हैं।

और जीव दो पृथक्-पृथक् सत्ताएं हैं। दोनों के गुण कर्म स्वभाव भी पृथक् हैं। दोनों ही कुछ कार्य करती हैं अर्थात् स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न परन्तु व्याप्य व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं। द्रव्यों का ज्ञान और युक्तिपूर्वक मेल होकर नाना रूप ग्रहण करना सृष्टि कहलाता है। परमेश्वर सृष्टि का रचयिता है। अविद्या के निमित्त से आत्मा बंधन में पड़ता है। सर्व दु:खों से छूटकर बंधरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना नियत समय तक मुक्ति के आनन्द को भोग कर पुनः संसार में आना मुक्ति कहलाती है।

भारत की स्त्री-जाति की पतितावस्था सुधारने में भी दयानन्द ने बड़ी उदारता और निर्भीकता का परिचय दिया। दयानन्द ने उन बुराइयों के विरुद्ध महती क्रान्ति की जिनसे स्त्रियां पीड़ित थीं। उन्होंने बताया कि स्वर्णिम युग में स्त्रियों को घर और समाज में पुरुषों के समान उच्च स्थान प्राप्त था। उन्हें पुरुषों के सदृश शिक्षित करना चाहिए और गृहस्थ के प्रबन्ध तथा अर्थ (पैसे) पर उनका ही सर्वोपरि अधिकार रहना चाहिए। दयानन्द ने विवाह में पुरुष और स्त्री के समानाधिकार का प्रतिपादन किया है।[१९] यद्यपि वे विवाह को अटूट सम्बन्ध मानते थे तथापि उन्होंने शूद्रों के विधवा-विवाह को विहित माना है वे यहाँ तक कह गए कि यदि विवाह से सन्तानोत्पत्ति न हो तो स्त्री पुरुष अस्थायी रूप से परस्पर समागम कर सकते हैं।

८—आर्य समाज का शिक्षा-कार्य

आर्यसमाज का आठवां नियम है अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करना। इस नियम को क्रियात्मक रूप देते हुए आर्यसमाज ने भारत में शिक्षा प्रसार के लिए बहुत बड़ा काम किया है, इसने मुख्यतया पंजाब और उत्तर प्रदेश में लड़कों और लड़कियों के स्कूलों और कालेजों का जाल बिछाया हुआ है। **दयानन्द ऐङ्ग्लो वैदिक कालेज** लाहौर और **गुरुकुल कांगड़ी** आर्य जनों के परिश्रम के आदर्श मधुकोष रहे हैं[२०]। इन संस्थाओं ने राष्ट्रीय आर्य शिक्षा का केन्द्र बनकर जाति की शक्तियों के विकास में बड़ा योग दिया है जो आर्य संस्कृति के ज्ञान-

---

१९—विवाह में लड़की की उम्र कम से कम १६ और पुरुष की २५ की होनी चाहिए। दयानन्द बाल-विवाह, अनमेल, बहु और वृद्ध-विवाह के विरोधी थे।

२०—दयानन्द वैदिक कालेज १८८६ में और गुरुकुल कांगड़ी १९०२ में स्थापित हुआ।

विज्ञान के प्रसार के साथ-साथ पाश्चात्य बौद्धिक और औद्योगिक सफल-ताओं का भी उपयोग करती हैं ।

आर्यसमाज की इन प्रगतियों के साथ हम उसकी सेवा सहायता की प्रगति या यथा अनाथालयों, उद्योगशालाओं, विधवाश्रमों, दुर्भिक्ष और महामारी आदि आपत्कालीन सेवा सहायता और रक्षा कार्यों को जोड़ सकते हैं ।

उपसंहार

यह दिखाने के लिए कि नेतृत्व की भावना और क्षमता से युक्त यह महान संन्यासी, जन-सामान्य का कितना प्रबल उद्धारक था मैंने इनके सम्बन्ध में बहुत कुछ कह दिया है । **वस्तुतः भारतीय राष्ट्रीय चेतना के पुनर्जन्म और जागरण में जो इस समय (मई १९३०) उस देश में अपने पूर्ण यौवन में देख पड़ रही है सबसे प्रबल प्रेरणा दयानन्द से प्राप्त हुई थी ।** उनके आर्यसमाज ने चाहे दयानन्द ने चाहा हो या न चाहा हो[२१] १९०५ की बंग क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त किया था । वस्तुतः दयानन्द पुनर्निर्माण और राष्ट्रीय संघठन के प्रबलतम अग्रणियों में से थे ।

२१—दयानन्द ने सार्वजनिक रूप से इसका निषेध किया है । उन्होंने सदैव अपने को अराजनीतिक और ब्रिटिश अविरोधी प्रकट किया है परन्तु ब्रिटिश गवर्नमेंट का निर्णय इससे भिन्न था । आर्यसमाज सामूहिक रूप से राजनीति से पृथक् रहता है परन्तु इसके सदस्य व्यक्तिगत रूप में स्वतन्त्र होते हैं ।

शताब्दी का नया प्रकाशन

१. आर्य समाज और उसका संदेश

२. सायण तथा वेद भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन

३. मांसाहार घोरपाप और स्वास्थ्य विनाशक

४. स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश

५. आर्य समाज का संदेश

६. आर्य समाज

७. पूजा किसकी

८. Dayanand and Veda

९. Swami Dayanad Social Reform

१०. Achivements of Arya Samaj

११. Contribution of Arya Samaj in the Making of Madern India 1875—1947

आर्यसमाज के नियम

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।